श्रीमद् भागवत का यह सार
भगवद् भक्ति ही आधार

श्रीमद्भागवत रसिक कुटुंब

गर्भ-स्तुति (10.2)

देवकी के गर्भ में आकर, बन यदुवंशी विष्णु विराजे।
शंकर ब्रह्मा करते वंदन, बंदीगृह में हरि हैं साजे।

नारायणं(न्) नमस्कृत्य, नरं(ञ्) चैव नरोत्तमम्।
देवीं(म्) सरस्वतीं(वँ) व्यासं(न्), ततो जयमुदीरयेत्

नामसङ्कीर्तनं(यँ) यस्य, सर्वपापप्रणाशनम्।
प्रणामो दुःखशमनस्, तं(न्) नमामि हरिं(म्) परम्

श्रीमद्भागवतमहापुराणम्

दशमः स्कंधः

अथ द्वितीयोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

प्रलम्बबकचाणूर- तृणावर्तमहाशनैः ।
मुष्टिकारिष्टद्विविद-पूतनाकेशिधेनुकैः ॥ 1॥

प्रलम्ब+बक+चाणूर, तृणावर्त+महाशनैः, मुष्टिकारिष्टद्+विविद

अन्यैश्चासुरभूपालैर्- बाणभौमादिभिर्युतः ।
यदूनां(ङ्) कदनं(ञ्) चक्रे, बली मागधसं(म्)श्रयः ॥ 2॥

अन्यैश्+चासुरभूपालैर्

श्रीशुकदेवजी कहते हैं - परीक्षित् ! कंस एक तो स्वयं बड़ा बली था और दूसरे, मगधनरेश जरासन्धकी उसे बहुत बड़ी सहायता प्राप्त थी। तीसरे,उसके साथी थे प्रलम्बासुर,बकासुर,चाणूर,तृणावर्त, अघासुर,

मुष्टिक, अरिष्टासुर, द्विविद, पूतना, केशी और धेनुक। तथा बाणासुर और भौमासुर आदि बहुत-से दैत्य राजा उसके सहायक थे। इनको साथ लेकर वह यदुवंशियोंको नष्ट करने लगा ।

ते पीडिता निविविशुः(ख्), कुरुपं(ञ्)चालकेकयान् ।

शाल्वान् विदर्भान् निषधान्, विदेहान् कोसलानपि ॥ 3॥

कुरुपञ्चाल+केकयान्

वे लोग भयभीत होकर कुरु, पञ्चाल, केकय, शाल्व, विदर्भ,निषेध,विदेह और कोसल आदि देशोंमें जा बसे ।

एके तमनुरुन्धाना, ज्ञातयः(फ्) पर्युपासते ।

हतेषु षट्सु बालेषु, देवक्या औग्रसेनिना ॥ 4॥

तमनुरुन्+धाना

सप्तमो वैष्णवं(न्) धाम, यमनन्तं(म्) प्रचक्षते ।

गर्भो बभूव देवक्या, हर्षशोकविवर्धनः ॥ 5॥

हर्ष+शोक+विवर्धनः

कुछ लोग ऊपर-ऊपरसे उसके मनके अनुसार काम करते हुए उसकी सेवामें लगे रहे। जब कंसने एक-एक करके देवकीके छः बालक मार डाले, तब देवकीके सातवें गर्भमें भगवान्के अंशस्वरूप श्रीशेषजी जिन्हें अनन्त भी कहते हैं-पधारे। आनन्दस्वरूप शेषजीके गर्भमें आनेके कारण देवकीको स्वाभाविक ही हर्ष हुआ । परन्तु कंस शायद इसे भी मार डाले,इस भयसे उनका शोक भी बढ़ गया ।

भगवानपि विश्वात्मा, विदित्वा कं(म्)सजं(म्) भयम् ।

यदूनां(न्) निजनाथानां(यँ), योगमायां(म्) समादिशत् ॥ 6॥

विश्वात्मा भगवान्ने देखा कि मुझे ही अपना स्वामी और सर्वस्व माननेवाले यदुवंशी कंसके द्वारा बहुत ही सताये जा रहे हैं। तब उन्होंने अपनी योगमायाको यह आदेश दिया ।

गच्छ देवि व्रजं(म्) भद्रे, गोपगोभिरलं(ङ्)कृतम् ।

रोहिणी वसुदेवस्य, भार्याऽऽस्ते नन्दगोकुले ।

अन्याश्च कं(म्)ससं(वँ)विग्ना, विवरेषु वसन्ति हि ॥ 7॥

गोपगो+भिरलङ्कृतम्, कं(म्)स+ सं(वँ)विग्ना

देवि! कल्याणी! तुम व्रजमें जाओ! वह प्रदेश ग्वालों और गौओंसे सुशोभित है।वहाँ नन्दबाबाके गोकुलमें वसुदेवकी पत्नी रोहिणी निवास करती हैं। उनकी और भी पत्नीयाँ कंससे डरकर गुप्त स्थानोंमें रह रही हैं ।

देवक्या जठरे गर्भं(म्), शेषाख्यं(न्) धाम मामकम् ।

तत् सं(न्)निकृष्य रोहिण्या, उदरे सं(न्)निवेशय ॥ 8॥

इस समय मेरा वह अंश जिसे शेष कहते हैं, देवकीके उदरमें गर्भ रूपसे स्थित है। उसे वहाँसे निकालकर तुम रोहिणीके पेटमें रख दो ।

अथाहमं(म्)शभागेन, देवक्याः(फ्) पुत्रतां(म्) शुभे ।

प्राप्स्यामि त्वं(यँ) यशोदायां(न्), नन्दपत्न्यां(म्) भविष्यसि ॥ 9॥

कल्याणी !अब मैं अपने समस्त ज्ञान,बल आदि अंशोंके साथ देवकी का पुत्र बनूँगा और तुम नन्दबाबाकी पत्नी यशोदाके गर्भ से जन्म लेना ।

अर्चिष्यन्ति मनुष्यास्त्वां(म्), सर्वकामवरेश्वरीम् ।

धूपोपहारबलिभिः(स्), सर्वकामवरप्रदाम् ॥ 10॥

अर्चिष्+यन्ति, मनुष्यास्+त्वां(म्), सर्वकाम+वरेश्वरीम् ,धूपो+पहार+बलिभिः(म्), सर्वकाम+वरप्रदाम्

तुम लोगोंको मुँहमाँगे वरदान देनेमें समर्थ होओगी । मनुष्य तुम्हें अपनी समस्त अभिलाषाओंको पूर्ण करनेवाली जानकर धूप-दीप, नैवेद्य एवं अन्य प्रकारकी सामग्रियों से तुम्हारी पूजा करेंगे ।

नामधेयानि कुर्वन्ति, स्थानानि च नरा भुवि ।

दुर्गेति भद्रकालीति, विजया वैष्णवीति च ॥ 11॥

कुमुदा चण्डिका कृष्णा, माधवी कन्यकेति च ।

माया नारायणीशानी, शारदेत्यम्बिकेति च ॥ 12॥

शारदेत्+यम्बिकेति

पृथ्वीमें लोग तुम्हारे लिये बहुत से स्थान बनायेंगे और दुर्गा,भद्रकाली, विजया,वैष्णवी,कुमुदा, चण्डिका, कृष्णा, माधवी, कन्या, माया, नारायणी, ईशानी, शारदा और अम्बिका आदि बहुत-से नाम पुकारेंगे ।

गर्भसं(ङ्)कर्षणात् तं(वँ) वै, प्राहुः(स्) सं(ङ्)कर्षणं(म्) भुवि ।

रामेति लोकरमणाद्, बलं(म्) बलवदुच्छ्रयात् ॥ 13॥

गर्भ+सङ्कर्षणात्+तं(वँ)

देवकीके गर्भ में से खींचे जानेके कारण शेषजीको लोग संसारमें 'संकर्षण' कहेंगे, लोकरंजन करनेके कारण 'राम' कहेंगे और बलवानोंमें श्रेष्ठ होनेके कारण 'बलभद्र' भी कहेंगे ।

सन्दिष्टैवं(म्) भगवता, तथेत्योमिति तद्वचः ।

प्रतिगृह्य परिक्रम्य, गां(ङ्) गता तत् तथाकरोत् ॥ 14॥

तत्+तथाकरोत्

जब भगवान् ने इस प्रकार आदेश दिया, तब योगमायाने 'जो आज्ञा' ऐसा कहकर उनकी बात शिरोधार्य की और उनकी परिक्रमा करके वे पृथ्वीलोकमें चली आयी तथा भगवानने जैसा कहा था,वैसे ही किया।

गर्भे प्रणीते देवक्या, रोहिणीं(यँ) योगनिद्रया ।

अहो विस्रं(म्)सितो गर्भ, इति पौरा विचुक्रुशुः ॥ 15॥

जब योगमायाने देवकीका गर्भ ले जाकर रोहिणीके उदरमें रख दिया, तब पुरवासी बड़े दुःख के साथ आपसमें कहने लगे 'हाय ! बेचारी देवकीका यह गर्भ तो नष्ट ही हो गया' ।

भगवानपि विश्वात्मा, भक्तानामभयं(ङ्)करः ।

आविवेशां(म्)शभागेन, मन आनकदुन्दुभेः ॥ 16॥

आविवे+शां(म्)श+भागेन

भगवान् भक्तोंको अभय करनेवाले हैं। वे सर्वत्र सब रूपमें हैं, उन्हें कहीं आना-जाना नहीं है। इसलिये वे वसुदेवजीके मनमें अपनी समस्त कलाओंके साथ प्रकट हो गये ।

स बिभ्रत् पौरुषं(न्) धाम, भ्राजमानो यथा रविः ।

दुरासदोऽतिदुर्धर्षो, भूतानां(म्) सम्बभूव ह ॥ 17॥

बिभ्रत्+पौरुषं(न्), दुरा+सदोऽति+दुर्धर्षो, सम्+बभूव

उसमें विद्यमान रहनेपर भी अपनेको अव्यक्तसे व्यक्त कर दिया। भगवान् की ज्योतिको धारण करने के कारण वसुदेवजी सूर्यके समान तेजस्वी हो गये, उन्हें देखकर लोगों की आँखें चौंधिया जातीं। कोई भी अपने बल, वाणी या प्रभावसे उन्हें दबा नहीं सकता था ।

ततो जगन्मं(ङ्)गलमच्युतां(म्)शं(म्),

समाहितं(म्) शूरसुतेन देवी ।

दधार सर्वात्मकमात्मभूतं(ङ्),

काष्ठा यथाऽऽनन्दकरं(म्) मनस्तः ॥ 18॥

जगन्+मङ्गल+मच्युतां(म्)शं(म्), सर्वात्+मकमात्+मभूतं(ङ्)

भगवान् के उस ज्योतिर्मय अंशको, जो जगत्का परम मङ्गल करनेवाला है, वसुदेवजीके द्वारा आधान किये जानेपर देवी देवकी ने ग्रहण किया। जैसे पूर्वदिशा चन्द्रदेव को धारण करती है, वैसे ही शुद्ध सत्त्वसे सम्पन्न देवी देवकीने विशुद्ध मनसे सर्वात्मा एवं आत्मस्वरूप भगवान्को धारण किया ।

सा देवकी सर्वजगन्निवास-

निवासभूता नितरां(न्) न रेजे ।

भोजेन्द्रगेहेऽग्निशिखेव रुद्धा,

सरस्वती ज्ञानखले यथा सती ॥ 19॥

भोजेन्द्र+गेहेऽग्नि+शिखेव

भगवान् सारे जगत्के निवासस्थान है। देवकी उनका भी निवासस्थान बन गयी। परन्तु घड़े आदिके भीतर बंद किये हुए दीपकका और अपनी विद्या दूसरेको न देनेवाले ज्ञानखलकी श्रेष्ठ विद्याका प्रकाश जैसे चारों ओर नहीं फैलता, वैसे ही कंसके कारागारमें बंद देवकी की भी उतनी शोभा नहीं हुई ।

तां(वँ) वीक्ष्य कं(म्)सः(फ्) प्रभयाजितान्तरां(वँ),

विरोचयन्तीं(म्) भवनं(म्) शुचिस्मिताम् ।

आहैष मे प्राणहरो हरिर्गुहां(न्),

ध्रुवं(म्) श्रितो यन्न पुरेयमीदृशी ॥ 20॥

प्रभया+जितान्+तरां(वँ), पुरे+यमी+दृशी

देवकी के गर्भमे भगवान् विराजमान हो गये थे। उसके मुखपर पवित्र मुसकान थी और उसके शरीरकी कान्तिसे बंदीगृह जगमगाने लगा था। जब कंसने उसे देखा, तब वह मन ही मन कहने लगा 'अबकी बार मेरे प्राणों के ग्राहक विष्णु इसके गर्भमें अवश्य ही प्रवेश किया है, क्योंकि इसके पहले देवकी कभी ऐसी न थी ।

किमद्य तस्मिन् करणीयमाशु मे,

यदर्थतन्त्रो न विहन्ति विक्रमम् ।

स्त्रियाः(स्) स्वसुर्गुरुमत्या वधोऽयं(यँ),

यशः(श्) श्रियं(म्) हन्त्यनुकालमायुः ॥ 21॥

करणी+यमाशु, स्वसुर्गुरु+मत्या, हन्+त्यनु+कालमायुः

अब इस विषय में शीघ्र से शीघ्र मुझे क्या करना चाहिये ? देवकीको मारना तो ठीक न होगा; क्योंकि वीर पुरुष स्वार्थवश अपने पराक्रमको कलंकित नहीं करते। एक तो यह स्त्री है, दूसरे बहन और तीसरे गर्भवती है। इसको मारनेसे तो तत्काल ही मेरी कीर्ति, लक्ष्मी और आयु नष्ट होजायगी ।

स एष जीवन् खलु सम्परेतो,

वर्तेत योऽत्यन्तनृशं(म्)सितेन ।

देहे मृते तं(म्) मनुजाः(श्) शपन्ति,

गन्ता तमोऽन्धं(न्) तनुमानिनो ध्रुवम् ॥ 22॥

योऽत्यन्+तनृशं(म्)+सितेन

वह मनुष्य तो जीवित रहनेपर भी मरा हुआ ही है, जो अत्यन्त क्रूरताका व्यवहार करता है। उसकी मृत्युके बाद लोग उसे गाली देते हैं। इतना ही नहीं, वह देहाभिमानियोंके योग्य घोर नरकमें भी अवश्य अवश्य जाता है ।

इति घोरतमाद् भावात्, सन्निवृत्तः(स्) स्वयं(म्) प्रभुः ।

आस्ते प्रतीक्षं(म्)स्तज्जन्म, हरेर्वैरानुबन्धकृत् ॥ 23॥

घोर+तमाद्+भावात्, प्रतीक्षं(म्)स्+तज्जन्म, हरेर्+वैरानु+ बन्धकृत्

यद्यपि कंस देवकीको मार सकता था, किन्तु स्वयं ही वह इस अत्यन्त क्रूरताके विचारसे निवृत्त हो गया। अब भगवान् के प्रति दृढ़ वैरका भाव मनमें गांठकर उनके जन्मकी प्रतीक्षा करने लगा ।

आसीनः(स्) सं(वँ)विशं(म्)स्तिष्ठन्, भुं(ञ्)जानः(फ्) पर्यटन् महीम् ।

चिन्तयानो हृषीकेश- मपश्यत् तन्मयं(ञ्) जगत् ॥ 24॥

सं(वँ)+विशं(म्)स्+तिष्ठन्,

वह उठते-बैठते, खाते-पीते, सोते-जागते और चलते-फिरते सर्वदा ही श्रीकृष्णके चिन्तनमें लगा रहता। जहाँ उसकी आँख पड़ती, जहाँ कुछ खड़का होता, वहाँ उसे श्रीकृष्ण दीख जाते । इस प्रकार उसे सारा जगत् ही श्रीकृष्णमय दीखने लगा ।

ब्रह्मा भवश्च तत्रैत्य, मुनिभिर्नारदादिभिः ।

देवैः(स्) सानुचरैः(स्) साकं(ङ्), गीर्भिर्वृषणमैडयन् ॥ 25॥

मुनिभिर्+नारदा+दिभिः, गीर्+भिर्+वृषणमै+डयन्

परीक्षित् ! भगवान् शंकर और ब्रह्माजी कंस के कैदखाने में आये। उनके साथ अपने अनुचरोंके सहित समस्त देवता और नारदादि ऋषि भी थे। वे लोग सुमधुर वचनोंसे सबकी अभिलाषा पूर्ण करनेवाले श्रीहरिकी इस प्रकार स्तुति करने लगे ।

सत्यव्रतं(म्) सत्यपरं(न्) त्रिसत्यं(म्),

सत्यस्य योनिं(न्) निहितं(ञ्) च सत्ये ।

सत्यस्य सत्यमृतसत्यनेत्रं(म्),

सत्यात्मकं(न्) त्वां(म्) शरणं(म्) प्रपन्नाः ॥ 26॥

सत्य+मृत+ सत्य+नेत्रं(म्), सत्यात्+मकं(न्)

प्रभो! आप सत्यसङ्कल्प हैं। सत्य ही आपकी प्राप्तिका श्रेष्ठ साधन है। सृष्टिके पूर्व, प्रलयके पश्चात् और संसारकी स्थितिके समय--इन असत्य अवस्थाओंमें भी आप सत्य हैं। पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश इन पाँच दृश्यमान सत्योंके आप ही कारण हैं। और उनमें अन्तर्यामीरूपसे विराजमान भी हैं। आप इस दृश्यमान जगत्के परमार्थस्वरूप हैं।आप ही मधुर वाणी और समदर्शनके प्रवर्तक हैं। भगवन्! आप तो बस, सत्यस्वरूप ही हैं। हम सब आपकी शरणमें आये है ।

एकायनोऽसौ द्विफलस्त्रिमूलश्-

चतूरसः(फ्) पं(ञ्)चविधः(ष्) षडात्मा ।

सप्तत्वगष्टविटपो नवाक्षो,

दशच्छदी द्विखगो ह्यादिवृक्षः ॥ 27॥

द्विफलस्+त्रिमूलश्, सप्तत्व+गष्ट+विटपो

यह संसार क्या है, एक सनातन वृक्ष। इस वृक्षका आश्रय है—एक प्रकृति। इसके दो फल हैं-सुख और दुःख; तीन जड़ें हैं —सत्त्व, रज और तम; चार रस हैं —धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। इसके जाननेके पाँच प्रकार हैं— श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, रसना और नासिका । इसके छः स्वभाव है—पैदा होना, रहना, बढ़ना, बदलना, घटना और नष्ट हो जाना। इस वृक्षकी छाल हैं सात धातुएँ—रस, रुधिर, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र । आठ शाखाएँ हैं—पाँच महाभूत, मन, बुद्धि और अहङ्कार। इसमें मुख आदि नवों द्वार खोड़र हैं। प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त और धनञ्जय— ये दस प्राण ही इसके दस पत्ते हैं। इस संसाररूप वृक्षपर दो पक्षी हैं—जीव और ईश्वर

त्वमेक एवास्य सतः(फ्) प्रसूतिस्-

त्वं(म्) सन्निधानं(न्) त्वमनुग्रहश्च ।

त्वन्मायया सं(वँ)वृतचेतसस्त्वां(म्),

पश्यन्ति नाना न विपश्चितो ये ॥ 28॥

त्वन्+ माययां, सं(वँ)वृतचेतसस्+ त्वां(म्)

इस संसाररूप वृक्षकी उत्पत्तिके आधार एकमात्र आप ही हैं। आपमें हीइसका प्रलय होता है और आपके ही अनुग्रहसे इसकी रक्षा भी होती है। जिनका चित्त आपकी मायासे आवृत हो रहा है, इस सत्यको समझने की शक्ति खो बैठा है—वे ही उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय करनेवाले ब्रह्मादि देवताओंको अनेक देखते हैं। तत्त्वज्ञानी पुरुष तो सबके रूपमें केवल आपका ही दर्शन करते हैं ।

बिभर्षि रूपाण्यवबोध आत्मा,

क्षेमाय लोकस्य चराचरस्य ।

सत्त्वोपपन्नानि सुखावहानि,

सतामभद्राणि मुहुः(ख्) खलानाम् ॥ 29॥

रूपाण्+यवबोध, सत्त्वो+पपन्+नानि, सता+मभद्राणि

आप ज्ञानस्वरूप आत्मा हैं। चराचर जगत्के कल्याणके लिये ही अनेकों रूप धारण करते हैं। आपके वे रूप विशुद्ध अप्राकृत सत्त्वमय होते हैं और संत पुरुषों को बहुत सुख देते हैं। साथ ही दुष्टोंको उनकी दुष्टताका दण्ड भी देते हैं। उनके लिये अमङ्गलमय भी होते हैं ।

त्वय्यम्बुजाक्षाखिलसत्त्वधाम्नि,

समाधिनाऽऽवेशितचेतसैके ।

त्वत्पादपोतेन महत्कृतेन,

कुर्वन्ति गोवत्सपदं(म्) भवाब्धिम् ॥ 30॥

त्वय्यम्बुजाक्षा+खिलसत्त्व+धाम्नि, समाधिनाऽऽवे+शितचे+तसैके,

त्वत्+पाद+पोतेन, महत्+कृतेन, गोवत्+सपदं(म्)

कमलके समान कोमल अनुग्रहभरे नेत्रोंवाले प्रभो। कुछ बिरले लोग ही आपके समस्त पदार्थों और प्राणियोंके आश्रयस्वरूप रूपमें पूर्ण एकाग्रतासे अपना चित्त लगा पाते हैं और आपके चरणकमलरूपी जहाजका आश्रय लेकर इस संसारसागरको बछड़ेके खुरके गढ़ेके समान अनायास ही पार कर जाते हैं। क्यों न हो, अबतक के संतोंने इसी जहाजसे संसारसागरको पार जो किया है ।

स्वयं(म्) समुत्तीर्य सुदुस्तरं(न्) द्युमन्,

भवार्णवं(म्) भीममदभ्रसौहृदाः ।

भवत्पदाम्भोरुहनावमत्र ते,

निधाय याताः(स्) सदनुग्रहो भवान् ॥ 31॥

भी+ममदभ्र+सौहृदाः, भवत्पदाम्भो+रुहना+वमत्र

परम प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! आपके भक्तजन सारे जगत्के निष्कपट प्रेमी, सच्चे हितैषी होते हैं। वे स्वयं तो इस भयङ्कर और कष्टसे पार करनेयोग्य संसारसागरको पार कर ही जाते हैं, किन्तु औरोके कल्याणके लिये भी वे यहाँ आपके चरण-कमलोंकी नौका स्थापित कर जाते हैं। वास्तवमें सत्पुरुषोंपर आपकी महान् कृपा है। उनके लिये आप अनुग्रहस्वरूप ही हैं ।

येऽन्येऽरविन्दाक्ष विमुक्तमानिनस्-

त्वय्यस्तभावादविशुद्धबुद्धयः ।

आरुह्य कृच्छ्रेण परं(म्) पदं(न्) ततः(फ्),

पतन्त्यधोऽनादृतयुष्मदङ्घ्रयः ॥ 32॥

येऽन्येऽ+रविन्दाक्ष, त्वय्यस्त+भावा+दविशुद्ध+बुद्धयः, पतन्त्य+धोऽना+दृतयुष्म+दङ्घ्रयः

कमलनयन ! जो लोग आपके चरणकमलोकी शरण नहीं लेते तथा आपके प्रति भक्तिभावसे रहित होने के कारण जिनकी बुद्धि भी शुद्ध नहीं है, वे अपनेको झूठ-मूठ मुक्त मानते हैं। वास्तवमें तो वे बद्ध ही हैं। वे यदि बड़ी तपस्या और साधनाका कष्ट उठाकर किसी प्रकार ऊँचे-से-ऊँचे पदपर भी पहुँच जायें, तो भी वहाँसे नीचे गिर जाते हैं ।

तथा न ते माधव तावकाः(ख्) क्वचिद्,

भ्रश्यन्ति मार्गात्त्वयि बद्धसौहृदाः ।

त्वयाभिगुप्ता विचरन्ति निर्भया,

विनायकानीकपमूर्धसु प्रभो ॥ 33॥

मार्गात्+त्वयि, विनायकानी+कपमूर्धसु

परन्तु भगवन् ! जो आपके अपने निज जन हैं, जिन्होंने आपके चरणोंमें अपनी सच्ची प्रीति जोड़ रखी है, वे कभी उन ज्ञानाभिमानियोंकी भाँति अपने साधन मार्गसे गिरते नहीं । प्रभो ! वे बड़े-बड़े विघ्न डालनेवालोंकी सेनाके सरदारोंके सिरपर पैर रखकर निर्भय विचरते हैं, कोई भी विघ्न उनके मार्गमें रुकावट नहीं डाल सकते; क्योंकि उनके रक्षक आप जो हैं ।

सत्त्वं(वँ) विशुद्धं(म्) श्रयते भवान् स्थितौ,

शरीरिणां(म्) श्रेय उपायनं(वँ) वपुः ।

वेदक्रियायोगतपः(स्)समाधिभिस्-

तवार्हणं(यँ) येन जनः(स्) समीहते ॥ 34॥

आप संसारकी स्थितिके लिये समस्त देहधारियोंको परम कल्याण प्रदान करनेवाला विशुद्ध सत्त्वमय, सच्चिदानन्दमय परम दिव्य मङ्गल-विग्रह प्रकट करते है। उस रूपके प्रकट होनेसे ही आपके भक्त वेद, कर्मकाण्ड, अष्टांगयोग, तपस्या और समाधिके द्वारा आपकी आराधना करते हैं। बिना किसी आश्रयके वे किसकी आराधना करेंगे ?

सत्त्वं(न्) न चेद्धातरिदं(न्) निजं(म्) भवेद्,

विज्ञानमज्ञानभिदापमार्जनम् ।

गुणप्रकाशैरनुमीयते भवान्,

प्रकाशते यस्य च येन वा गुणः ॥ 35॥

चेद्धा+तरिदं(न्), विज्ञानमज्ञा+नभिदा+पमार्जनम्, गुणप्रकाशै+रनुमीयते

प्रभो । आप सबके विधाता हैं। यदि आपका यह विशुद्ध सत्त्वमय निज स्वरूप न हो, तो अज्ञान और उसके द्वारा होनेवाले भेदभावको नष्ट करनेवाला अपरोक्ष ज्ञान ही किसीको न हो। जगत्में दीखनेवाले तीनों गुण आपके हैं और आपके द्वारा ही प्रकाशित होते हैं, यह सत्य है। परन्तु इन गुणोंकी प्रकाशक वृत्तियोंसे आपके स्वरूपका केवल अनुमान ही होता है, वास्तविक स्वरूपका साक्षात्कार नहीं होता।

न नामरूपे गुणजन्मकर्मभिर्-

निरूपितव्ये तव तस्य साक्षिणः ।

मनोवचोभ्यामनुमेयवर्त्मनो,

देव क्रियायां(म्) प्रतियन्त्यथापि हि ॥ 36॥

वचोभ्या+मनुमेय+वर्त्मनो, प्रतियन्+त्यथापि

भगवन् ! मन और वेद-वाणीके द्वारा केवल आपके स्वरूपका अनुमानमात्र होता है। क्योंकि आप उनके द्वारा दृश्य नहीं; उनके साक्षी हैं। इसलिये आपके गुण, जन्म और कर्म आदिके द्वारा आपके नाम और रूपका निरूपण नहीं किया जा सकता। फिर भी प्रभो! आपके भक्तजन उपासना आदि क्रियायोगोंके द्वारा आपका साक्षात्कार तो करते ही हैं ।

शृण्वन् गृणन् सं(म्)स्मरयं(म्)श्च चिन्तयन्-

नामानि रूपाणि च मं(ङ्)गलानि ते ।

क्रियासु यस्त्वच्चरणारविन्दयो-

राविष्टचेता न भवाय कल्पते ॥ 37॥

यस्त्वच्+चरणा+रविन्दयो

जो पुरुष आपके मङ्गलमय नामों और रूपोंका श्रवण, कीर्तन, स्मरण और ध्यान करता है और आपके चरणकमलोंकी सेवामें ही अपना चित्त लगाये रहता है— उसे फिर जन्म-मृत्युरूप संसारके चक्रमें नहीं आना पड़ता ।

दिष्ट्या हरेऽस्या भवतः(फ्) पदो भुवो,

भारोऽपनीतस्तव जन्मनेशितुः ।

दिष्ट्यां(ङ्)कितां(न्) त्वत्पदकैः(स्) सुशोभनैर्-

द्रक्ष्याम गां(न्) द्यां(ञ्) च तवानुकम्पिताम् ॥ 38॥

भारोऽ+पनीतस्+तव, दिष्ट्याङ्+कितां(न्), त्वत्+पदकैः(स्)

सम्पूर्ण दुःखोंके हरनेवाले भगवन् ! आप सर्वेश्वर हैं। यह पृथ्वी तो आपका चरणकमल ही है। आपके अवतारसे इसका भार दूर हो गया । धन्य है ! प्रभो ! हमारे लिये यह बड़े सौभाग्यकी बात है कि हमलोग आपके सुन्दर-सुन्दर चिह्नोंसे युक्त चरणकमलोंके द्वारा विभूषित पृथ्वीको देखेंगे और स्वर्गलोकको भी आपकी कृपासे कृतार्थ देखेंगे ।

न तेऽभवस्येश भवस्य कारणं(वँ),

विना विनोदं(म्) बत तर्कयामहे ।

भवो निरोधः(स्) स्थितिरप्यविद्यया,

कृता यतस्त्वय्यभयाश्रयात्मनि ॥ 39॥

स्थितिरप्य+विद्यया, यतस्त्वय्+यभया+श्रयात्मनि

प्रभो ! आप अजन्मा हैं। यदि आपके जन्मके कारणके सम्बन्धमें हम कोई तर्क ना करें, तो यही कह सकते हैं कि यह आपका एक लीला-विनोद है। ऐसा कहनेका कारण यह है कि आप तो द्वैतके लेशसे रहित सर्वाधिष्ठान स्वरूप हैं और इस जगत्की उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलय अज्ञानके द्वारा आपमें आरोपित हैं ।

मत्स्याश्वकच्छपनृसिं(म्)हवराहहं(म्)स-

राजन्यविप्रविबुधेषु कृतावतारः ।

त्वं(म्) पासि नस्त्रिभुवनं(ञ्) च यथाधुनेश

भारं(म्) भुवो हर यदूत्तम वन्दनं(न्) ते ॥ 40॥

मत्स्याश्व+ कच्छपनृसिं(म्)ह+ वराहहं(म्)स, राजन्+यविप्र+विबुधेषु

प्रभो! आपने जैसे अनेकों बार मत्स्य, हयग्रीव, कच्छप, नृसिंह, वराह, हंस, राम, परशुराम और वामन अवतार धारण करके हमलोगोंकी और तीनों लोकोंकी रक्षा की है- वैसे ही आप इस बार भी पृथ्वीका भार हरण कीजिये । यदुनन्दन ! हम आपके चरणोंमें वन्दना करते हैं ।

दिष्ट्याम्ब ते कुक्षिगतः(फ्) परः(फ्) पुमा-

नं(म्)शेन साक्षाद् भगवान् भवाय नः ।

मा भूद् भयं(म्) भोजपतेर्मुमूर्षोर्-

गोप्ता यदूनां(म्) भविता तवात्मजः ॥ 41॥

साक्षाद्+भगवान्, माभूद्+भयं(म्)भो+जपतेर्+मुमूर्षोर्

'माताजी ! यह बड़े सौभाग्यकी बात है कि आपकी कोखमें हम सबका कल्याण करनेके लिये स्वयं भगवान् पुरुषोत्तम अपने ज्ञान, बल आदि अंशोंके साथ पधारे हैं। अब आप कंससे तनिक भी मत डरिये । अब तो वह कुछ ही दिनोंका मेहमान है । आपका पुत्र यदुवंशकी रक्षा करेगा' ।

श्रीशुक उवाच

इत्यभिष्टूय पुरुषं(यँ), यद्रूपमनिदं(यँ) यथा ।

ब्रह्मेशानौ पुरोधाय, देवाः(फ्) प्रतिययुर्दिवम् ॥ 42॥

यद्रू+पमनिदं(यँ), प्रतिययुर्+दिवम्

श्रीशुकदेवजी कहते हैं - परीक्षित् ! ब्रह्मादि देवताओंने इस प्रकार भगवान्की स्तुति की। उनका रूप 'यह है' इस प्रकार निश्चितरूपसे तो कहा नहीं जा सकता, सब अपनी-अपनी मतिके अनुसार उसका निरूपण करते हैं। इसके बाद ब्रह्मा और शङ्करजीको आगे करके देवगण स्वर्गमें चले गये ।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहं(म्)स्यां(म्) सं(म्)हितायां(न्)

दशमस्कन्धे पूर्वार्धे गर्भगतविष्णोर्ब्रह्मादिकृतस्तुतिर्नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २॥

ॐ पूर्णमदः(फ्) पूर्णमिदं(म्)पूर्णात्पूर्णमुदच्यते

पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

ॐ शान्तिः(श्)शान्तिः(श्)शान्तिः ॥